



## दैनिक भास्कर

Date: 10-12-18

### चीन : पहले कर्ज दो, फिर कब्जा करो

खुले हाथों कर्ज बांटने की चीन की इस नीति को 'चेक डिप्लोमैसी' नाम दिया गया है।

रहीस सिंह , (विदेश मामलों के विशेषज्ञ)



चीन इस समय उस साहूकार की तरह बर्ताव कर रहा है, जो पहले तो गरीब किसानों को कर्ज देता है और फिर कर्ज नहीं चुकाने पर उनकी जमीन पर कब्जा कर लेता है। चीन अपनी यह साहूकारी हिन्द महासागर से लेकर प्रशांत और अटलांटिक तक के उन छोटे व गरीब देशों पर आजमा रहा है जो उसके लिए स्ट्रैटेजिक डेस्टिनेशन्स हैं और जिनके जरिए वह अपनी आर्थिक व साम्राज्यिक महत्वाकांक्षाएं पूरी कर सकता है।

#### घातक है चीन की चेक डिप्लोमैसी

खुले हाथों कर्ज बांटने की चीन की इस नीति को 'चेक डिप्लोमैसी' (Cheque Diplomacy) नाम दिया जा रहा है। इसके जरिए वह दक्षिण एशियाई देशों में ही नहीं, पूर्वी एशिया से लेकर अफ्रीकी देशों तक में अपनी घुसपैठ बना रहा है। इसके तहत पहले तो चीन खूब कर्ज देता है और जब चीन द्वारा दिए गए कर्ज को कोई देश चुकता नहीं कर पाता तो उन प्रोजेक्ट्स में इक्विटी खरीद लेता है, जिनके लिए उसने कर्ज दिया था। बाद में चीन इन प्रोजेक्ट्स को अपनी कंपनियों के सुपुर्द कर देता है। ये कंपनियां अनेक कर्मचारियों को लेकर उन देशों में पहुंच जाती हैं। फिर वहां एक चीनी बस्ती का निर्माण होने लगता है। इसके बाद पूंजी, कंपनी और लोगों की सुरक्षा के नाम पर चीनी सैन्य टुकड़ी पहुंच जाती है। इस तरह चीन जगह-जगह नवउपनिवेशवादी व्यवस्था बना रहा है।

#### इस तरह आजमाता है गलत हथकंडे

चीन कर्ज देते समय कई तरह के गलत हथकंडे भी आजमाता है। उदाहरणार्थ वर्ष 2016 में जब चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग बांग्लादेश की यात्रा पर गए थे तो उन्होंने बांग्लादेश को 24.45 बिलियन डॉलर के प्रोजेक्ट के लिए ऋण देने पर सहमति दी थी। यह ऋण राशि बांग्लादेश के सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 20 प्रतिशत के बराबर थी। चीन द्वारा दिया गया कर्ज 'गवर्नमेंट टू गवर्नमेंट' (जी टू जी) था। जी टू जी एक तरह का सॉफ्ट ऋण होता है जो बहुत ही कम ब्याज पर (0.5 फीसदी तक) दिया जाता है। लेकिन बाद में चीनी अधिकारियों ने इस सॉफ्ट ऋण को कॉमर्शियल ऋण में बदलने का फैसला सुना दिया, जिस पर भारी ब्याज चुकाना होगा। परिणाम यह हुआ कि बांग्लादेश चीनी कुचक्र में फंस गया। इसी तरह चीन ने मालदीव की इब्राहीम सालिह की सरकार को 3.2 अरब डॉलर का इनवॉइस थमाया है।

श्रीलंका, नेपाल, पाक भी चपेट में

बांग्लादेश और मालदीव ही नहीं, श्रीलंका, पाकिस्तान व नेपाल सहित पूर्वी एशिया के कई देश चीन की इस कर्ज डिप्लोमेसी की चपेट में हैं। श्रीलंका ने हम्बनटोटा सहित कई परियोजनाओं के लिए चीन से कर्ज लिया था, लेकिन अपनी न्यूनतम आर्थिक विकास दर के कारण वह इस कर्ज को चुका पाने में असमर्थ है। इस कारण चीनी ब्याज अब इक्विटी में बदल रहा है और श्रीलंका के घरेलू प्रोजेक्ट्स में चीन की हिस्सेदारी बढ़ रही है। इससे चीन को श्रीलंकाई आर्थिक संसाधनों से जुड़ने के साथ-साथ हिन्द महासागर में अपनी सामरिक ताकत को बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो रहा है। यही स्थिति नेपाल और पाकिस्तान के साथ भी है।

### विश्व व्यवस्था बदलने की कोशिश

चीन, कंबोडिया, म्यांमार, लाओस से लेकर अफ्रीकी देशों को भी शिकार बना रहा है। दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों को ऋण जाल में फंसाकर वह दक्षिण चीन सागर में अपनी स्थिति मजबूत करना चाहता है। अफ्रीकी देशों में पहुंचकर वह अमेरिकी ताकत को काउंटर करना चाहता है। म्यांमार लगभग 16 बिलियन डॉलर के चीनी ऋण के नीचे दबा हुआ है। कम्बोडिया पर कुल अंतरराष्ट्रीय ऋण का लगभग 70 प्रतिशत ऋण चीन का है। चीन अफ्रीकी देश जिबूती में भी सैन्य बेस तथा आधारभूत सुविधाओं का विकास कर रहा है और इसके लिए उसने जिबूती को 14 बिलियन डॉलर का कर्ज दिया है। चीन जिबूती का उपयोग हिन्द महासागर में वैश्विक शक्ति-संतुलन के लिए करना चाहता है।

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 10-12-18

### जीत की गारंटी नहीं हैं राजनीतिक रेवडियां

#### शेखर गुप्ता

इससे पहले कि आप तेलंगाना और देश के सबसे तेज विकसित होते महानगर और उसकी राजधानी हैदराबाद की 'दीवारों पर लिखी इबारत' पढ़ें, आपको उस इबारत के रंग पर ध्यान देना चाहिए। मुख्यमंत्री के चंद्रशेखर राव (केसीआर) और उनकी पार्टी टीआरएस ने पूरे प्रदेश को गुलाबी रंग में रंग दिया है। ऐसा लग रहा है मानो केवल एक ही पार्टी ये चुनाव लड़ रही हो। मैंने कभी किसी एक दल का दृश्य प्रचार पर ऐसा दबदबा नहीं देखा। गुजरात में भाजपा और कांग्रेस के बीच इसका अनुपात 20:1 का था। तेलंगाना में यह 90:1 है। मैंने जब अपनी खिड़की से देखा तो मुझे सात विशाल होर्डिंग दिखे जो केसीआर और टीआरएस के थे। सभी उनकी पार्टी के गुलाबी रंग में थे। अकेले राजधानी में ऐसे 700 होर्डिंग हैं।

वह प्रतिद्वंद्वियों पर हमलावर होने में नहीं चूक रहे। वह कांग्रेसनीत प्रजाकुटमी पर भी हमलावर हैं और भाजपा पर भी। यह ऐसा दुर्लभ चुनाव है जिसमें सत्ताधारी दल पूरी तरह अपने पिछले प्रदर्शन के भरोसे मैदान में है। वे केवल दीवारें रंग रहे हैं जिन पर उनके अब तक के काम का ब्योरा है। इनमें उनकी कल्याणकारी योजनाओं और निशुल्क दी जाने वाली चीजों का बखान है। परंतु क्या उनकी योजनाएं लागू की जा सकती हैं? कहीं घाटा बेकाबू तो नहीं हो रहा? ऐसे सवालों को बकवास करार देते हुए वह कहते हैं कैसा घाटा? प्रोफेसर केसीआर अर्थशास्त्र पर ज्ञान देते हुए कहते हैं, 'दुनिया में किस देश का घाटा सबसे अधिक है, अमेरिका का? उसके बाद जापान और फिर चीन का क्या? लोगों को कुछ पता नहीं

होता। बस बातें करते हैं।' तमिलनाडु ने रेवडिया बांटने की राजनीति शुरू की, खासतौर पर जयललिता ने। केसीआर उसे अलग स्तर पर ले गए। ये चुनाव बताएंगे कि तरीका कारगर साबित हुआ या नहीं।

पाठक जानते हैं कि उपहारों की राजनीति को लेकर मेरे मन में तमाम शंकाएं हैं। राजस्थान में वर्ष 2008-13 के दौरान कांग्रेस की सरकार को बाड़मेर के केयर्न तेल क्षेत्र के कारण कच्चे तेल की भारी रॉयल्टी मिली। वह चुनाव निशुल्क उपहारों की प्रयोगशाला बना और मतदाताओं ने सोनिया गांधी और राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की कल्पनाओं को विराम देते हुए अशोक गहलोत की कांग्रेस सरकार को 200 सदस्यों वाली विधानसभा में 163-21 से परास्त कर दिया। जयललिता जब तमिलनाडु में दोबारा चुनाव जीतने में कामयाब रहीं तो गरीबोन्मुखी राजनीति का बहुत जश्न मनाया गया। इसका श्रेय उनकी उन नीतियों को दिया गया जिसके तहत वे मंगलसूत्र, मिक्सर ग्राइंडर जैसी तमाम चीजें बांट रही थीं। परंतु हकीकत यह थी कि 13 प्रतिशत वोट उनसे दूर हुए थे और अगर विपक्ष के वोट बंटे नहीं होते तो वे यकीनन हार जातीं।

लब्बोलुआब यह कि अभी तक ये साबित नहीं हुआ है कि ये रेवडियां निश्चित तौर पर वोट दिलाती हैं। परंतु ये बातें केसीआर से मत कहिए। उन्हें दो ही चीजों पर गर्व है: अमल का रिकॉर्ड व उनकी कल्पनाशीलता। तेलंगाना के अलग-अलग इलाकों से गुजरते हुए आप उनकी बात का वजन समझ पाएंगे। युवतियों को उनके विवाह पर एक लाख रुपये उपहार स्वरूप दिए जा रहे हैं। मुस्लिम युवतियों के लिए इस योजना को 'शादी मुबारक' का नाम दिया गया है जबकि बाकी के लिए 'कल्याण लक्ष्मी'। उन्होंने गरीबों के लिए दो शयनकक्ष वाले आवास बनाने की योजना भी पेश की है जिसे 2बीएचके योजना का नाम दिया गया है।

अपने पहले कार्यकाल में वे ऐसे 5 लाख मकान बनवा रहे हैं और तेलंगाना में इस योजना का प्रभाव महसूस किया जा सकता है। उनके निर्वाचन क्षेत्र गजवेल में ये आवास दिखते हैं। वह कहते हैं, 'मोदी एक कमरे का मकान दे रहे हैं, उनमें महिलाएं कपड़े कहां बदलेंगी?' क्या वे 7.50 लाख रुपये वाले इन 2बीएचके आवास का खर्च उठा पाएंगे? इसका जवाब कई नवाचारों में छिपा है। वे सरकारी जमीन दे रहे हैं, सीमेंट को करमुक्त कर रहे हैं, बालू निशुल्क दे रहे हैं, ताप बिजली घरों की राख से बनी सब्सिडी वाली ईंट इस्तेमाल में ला रहे हैं, प्रधानमंत्री आवास योजना के लिए मिलने वाली 1.50 लाख रुपये की राशि का इस्तेमाल 7.50 लाख रुपये की लागत में कर रहे हैं। ये बेहतर सुविधाओं वाले मकान हैं।

इनके अलावा भी तमाम अच्छी-बुरी और दिलचस्प योजनाएं हैं। उन्होंने निशुल्क बढ़िया सरकारी अस्पताल बनवाए। गर्भवती स्त्रियों के लिए निशुल्क एंबुलेंस योजना शुरू की। अस्पताल से घर आने वाली प्रसूता और उसकी संतानों को सूटकेस दिया जाता है जिसमें कपड़े, प्रसाधन सामग्री तथा खिलौने होते हैं। इसे केसीआर किट कहा जाता है। इस पर उनका बड़ा सा चित्र होता है। करीमनगर के अस्पताल में हमें ये तीनों देखने को मिले। हमने माताओं और परिवारों से बात भी की। वे सभी बहुत कृतज्ञ दिखे। एक योजना ऐसी भी है जिसका खुले दिमाग से परीक्षण करने की आवश्यकता है। यह योजना है रैयत बंधु यानी कृषक मित्र। कृषि संकट राष्ट्रीय समस्या है। कच्चे माल में सब्सिडी से लेकर न्यूनतम समर्थन मूल्य तक इससे निपटने की तमाम कोशिशें नाकाम रही हैं। तेलंगाना किसानों को प्रति वर्ष प्रति फसल 4000 रुपये एकड़ की राशि दे रहा है, भले ही उनकी जोत का रकबा कुछ भी हो। यानी हर वर्ष 8000 रुपये एकड़। पिछले साल इस योजना पर 12,000 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इसकी काफी आलोचना हुई क्योंकि अमीर और सैकड़ों एकड़ के किसान भी इस योजना का लाभ ले रहे हैं।

आंकड़े अलग ही कहानी कहते हैं। 58.30 लाख लाभार्थियों में से (3.5 करोड़ की आबादी में यह तादाद बहुत अधिक है) केवल 14,900 ही 50 एकड़ या अधिक के काश्तकार थे। कुल लाभार्थियों में से केवल 1.15 लाख या 2 फीसदी से भी कम 10 एकड़ से अधिक जमीन रखते हैं। यानी यह योजना काफी आकर्षक है। केसीआर के अर्थशास्त्र में सबके लिए कुछ न कुछ है। चरवाहा जातियों के लिए 20 भेड़ और एक मेढ़ा। धोबी समुदाय के लिए औद्योगिक वॉशिंग मशीन। मछलियों के लिए मछलियों के बीज आदि। जातीय एकता के लिए काम करने वाले विद्वान कांचा इलैया का मानना है कि इससे भविष्य की पीढ़ियां जाति आधारित पेशों की ओर बढ़ेंगी। ये सब वोट जुटाने की तरकीब हैं और रेवडियां सबको पसंद आती हैं।

सवाल यह है कि क्या लोग इनके बदले वोट देते हैं? इस बारे में रुझान मिलेजुले हैं लेकिन मोटे तौर पर इन्हें नकारात्मक माना जा सकता है। हमने देखा कि कैसे 2013 में राजस्थान को भारी हार का सामना करना पड़ा था। तमिलनाडु तो रेवड़ी राजनीति का गढ़ है लेकिन वहां भी सत्ताधारी दल क्रम से बदलते रहे हैं। पंजाब में अकाली-भाजपा सरकार निशुल्क बिजली और आटा-दाल योजना के बावजूद नहीं चली। गुजरात, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि में मुख्यमंत्री तो एक से अधिक बार जीते लेकिन वहां ऐसे निशुल्क उपहारों का चलन नहीं है। कर्नाटक में सिद्धारमैया के नेतृत्व में कांग्रेस ने जयललिता की शैली में पैसे उड़ाए लेकिन वह भाजपा को नहीं हरा पाए। छत्तीसगढ़ में जरूरी निशुल्क चावल वितरण के चलते मुख्यमंत्री रमन सिंह को चावल वाले बाबा का नाम मिला और उन्हें दो बार चुनाव जीतने में भी मदद मिली। अब उनके प्रतिद्वंद्वियों ने उनसे भी अधिक बढ़चढ़ कर दावे किए।

मतदाता को पता है कि एक बार मिला उपहार वापस नहीं होता। याद कीजिए कैसे मोदी 2014 में मनरेगा की आलोचना करते थे लेकिन सत्ता में आने के बाद उन्होंने उस योजना में काफी पैसा खर्च किया। तेलंगाना में भाजपा मुफ्त में गाय देने की पेशकश कर रही है। परंतु अब मामला निशुल्क उपहारों से कहीं आगे निकल चुका है। पहचान, अंतरराज्यीय प्रतिद्वंद्विता, धर्म, राष्ट्रवाद और राज्यों के चुनाव में उपराष्ट्रवाद तक। एक नुक्कड़ पर केसीआर के बेटे और हैदराबाद के परेड मैदान में उनके पिता की सभा में एक बात साझा है। दोनों नेता 'जय' की पुकार लगाते हैं और जनता जोर से तेलंगाना कहती है। अब प्रजाकुटमी के मंच से यह नारा नहीं दोहराया जा सकता क्योंकि वहां आंध्र प्रदेश के चंद्रबाबू नायडू साझेदार हैं। शायद केवल निशुल्क उपहारों के दम पर केसीआर सत्ता में वापसी न कर पाएं, तेलंगाना गौरव का जुड़ाव संभावनाओं में इजाफा अवश्य करता है।

**Date: 10-12-18**

## संतुलनकारी कदम

### संपादकीय

राजकोषीय मोर्चे पर आई एक बुरी खबर के मुताबिक इस वर्ष अप्रैल से अक्टूबर महीनों के बाद सरकारी व्यय राजस्व से अधिक रहा। दूसरे शब्दों में कहें तो वित्त वर्ष 2018-19 की पहली छमाही में ही हम पूरे वर्ष के लिए तय राजकोषीय घाटे की सीमा पार कर गए। चालू वित्त वर्ष के दौरान राजकोषीय घाटे के लिए जीडीपी के 3.3 फीसदी का स्तर तय किया गया है। यह लक्ष्य खुद अतीत के राजकोषीय समेकन के लक्ष्य से विचलन दर्शाता है। हालांकि सरकार का सोचना

इससे अलग है और इस बात की प्रबल आशंका है कि सरकार इस लक्ष्य से चूक सकती है। यह चुनावी वर्ष है और कई सरकारों ने दोबारा निर्वाचित होने की कोशिश में अपना खजाना खोल दिया है। धीमी वृद्धि दर, व्यय में ठहराव, अनिश्चित राजस्व और लोकलुभावन दबाव आदि कारकों के चलते राजकोषीय घाटे का लक्ष्य हासिल होना और भी मुश्किल होता जा रहा है।

अच्छी बात यह है कि मुद्रास्फीति की स्थिति इस विपरीत राजकोषीय हालात में भी ठीक बनी हुई है। वह आरबीआई द्वारा तय 4 फीसदी के लक्ष्य से बराबर नीचे बनी हुई है। अक्टूबर में वह 3.3 फीसदी के स्तर पर थी। इससे अर्थव्यवस्था के कई पहलू सामने आते हैं। इसमें कमजोर कृषि कीमतें भी शामिल हैं। बीते तीन महीनों के दौरान वैश्विक तेल कीमतें 30 फीसदी तक गिरी हैं। इससे आरबीआई की मौजूदा नीतिगत दर में एक अंतराल उत्पन्न हुआ है। अब यह सवाल है कि आरबीआई कब तक कड़ाई का रुख बरकरार रखता है? जीडीपी के हालिया आंकड़े बताते हैं कि निजी क्षेत्र का निवेश लंबी अवधि के बाद फिर से बहाल होता दिख रहा है। परंतु मुद्रास्फीति के स्तर को देखते हुए वास्तविक ब्याज दर ऊंची बनी हुई है।

ऐसे में वृद्धि दर के गति पकड़ने की संभावना नहीं नजर आती। इस बीच आरबीआई के सतर्कता बरतने की कई वजह हैं। उदाहरण के लिए यह स्पष्ट नहीं है कि तेल कीमतें अगले वर्ष कैसी रहेंगी। पेट्रोल निर्यातक देशों का समूह और रूस समेत गैर ओपेक देशों ने गत सप्ताह वियना में बैठक की और वे आगामी वर्ष में उत्पादन में कमी करने के लिए राजी हो गए हैं। कहा जा सकता है कि तेल कीमतों में एक बार फिर तेजी आएगी। अभी यह भी निश्चित नहीं है कि अमेरिका ने ईरान के तेल के मामले में चीन, भारत और जापान को जो रियायत दी है, वह भविष्य में की जाने वाली समीक्षा के बाद भी जारी रहेगी।

यानी सरकार के सामने की राह अस्पष्ट है। एक ओर राजकोषीय कठिनाइयां, लोकलुभावन दबाव और खर्च बढ़ाने की बात है तो दूसरी ओर वास्तविक अर्थव्यवस्था में व्याप्त तनाव है। आगे चलकर अनुकूल आधार प्रभाव समाप्त हो सकता है जो वर्ष की पहली छमाही में बरकरार था। अगर ऐसा होता है तो यह अनुमान लगाना काफी कठिन हो जाएगा कि पूरे वर्ष के दौरान देश की आर्थिक वृद्धि दर 7 फीसदी से कितनी अधिक होगी। होगी भी या नहीं। किसानों की आय बढ़ाने की कवायद चुनावी लाभ तो दिला सकती है और किसानों की निराशा कम कर सकती है लेकिन इसकी कीमत एक बार फिर बढ़ी हुई खाद्य मुद्रास्फीति के रूप में चुकानी होगी। वह पुनः ढांचागत समस्या में तब्दील हो जाएगी। ऐसे में सरकार के लिए बेहतर यही होगा कि वह राजकोषीय स्थिति को लेकर अपना रुख लचीला रखे और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करे कि गैर कर राजस्व पर्याप्त हो। इसके बीच ही उसे अर्थव्यवस्था को और अधिक जीवंत बनाने के प्रयास भी करने चाहिए। ये प्रयास ऐसे होने चाहिए कि भारी भरकम खर्च पर निर्भरता न हो।

**THE ECONOMIC TIMES***Date: 10-12-18*

## **Subsidise Land, Don't Regulate School Fees**

### **Editorial**

The Delhi government has ordered derecognition of a school for failing to comply with its directive to slash fees. It says it derives its authority to regulate fees from making land available at concessional rates for schools. This is mistaken. True, it makes eminent sense for the state to ensure that the young get decent schooling. But the way to achieve is to allow the private sector to expand supply. There are different ways of doing this. Kerala, which achieved universal schooling and 100% literacy before other states, did so by making extensive use of private schools, which were given state funding and held accountable for meeting standards.

Kerala also regulated school fees at private schools, in return for state funding of teacher salary and building maintenance. But this, again, is just one model. A simpler way to do this would be for the state to subsidise the cost of land for schools and hospitals, and rely on competition among providers to produce different kinds of institutions of different levels of quality charging different levels of fees. Making land available at sub-market levels must be understood as making education and healthcare more affordable at each level of quality and corresponding price, rather than as justification for uniformity of fees and levelling of standards. The government's job should be to ensure that standards do not dip below a particular minimum, not to regulate fees.

The government should focus on building schools in large numbers to expand access to education for the poor. Instead, it is harassing the private sector, which is catering to unmet demand, through caps on fees and onerous regulation. By doing so, it is discouraging existing private providers of education from expanding and deterring new entrants. These are perverse outcomes. The government needs to rethink its priority.

---



*Date: 10-12-18*



THE TIMES OF INDIA

## Next Steps In GST

*How to improve this major structural reform of India's economy*

**Hasmukh Adhia, (The writer is former Finance Secretary of India)**



GST has been a major structural reform of the current government. Replacing multiple taxes and cesses of state and central governments into a single tax has been a major relief to trade and industry. At the same time reduction in overall tax incidence has brought relief to the end-consumers. The IT driven tax filing system of GST has made it difficult for intermediaries in the value added chain to evade taxes.

The movement of goods across the country has become faster and less cumbersome with the help of a single e-way bill carried by the transporter, and because of abolition of state check posts. GST has given a big boost to the manufacturing sector as a whole, which will accelerate the growth of the economy. Initial difficulties faced in implementation of GST were not unexpected. However, they were quickly resolved because of the flexibility shown by the GST council in correcting course. The experience of other countries where GST was introduced shows that all of them faced some teething troubles for the initial two to three years. As compared to Australia and Malaysia, the Indian experience shows that GST has settled down fairly well. Now GST has much wider acceptability even among MSMEs.

The question now is what GST's future course should be in India. So far, the government has gone by the maxim 'the best should not be the enemy of the good'. But we must continue on a quest for the best. Having implemented GST in a vast country like India after taking 31 states on board, it is time to perfect the system gradually. In order to move towards an ideal GST, we must set an agenda for the next three to five years. Our first attention should go in the direction of stabilising revenue both for states and Centre. While states are already comfortable because of the compensation mechanism in which 14% incremental growth rate of revenue is assured, the Centre still needs to worry about its revenue.

GST revenue is undoubtedly going to get a major boost when the government implements the new system of return filing in which there will be perfect matching of invoices for availing input tax credit. At present, the total tax liability declared by registered dealers every month is Rs 5 lakh crore, of which approximately a lakh crore is paid in cash and the remaining Rs 4 lakh crore is settled by way of input tax credit. Even if we stop 10% leakage in wrong availing of input tax credit, it will mean that to that extent, the monthly GST paid by cash should go up from Rs 1 lakh crore to Rs 1.4 lakh crore.

Second, an attempt should be made to bring all excluded items into GST one by one in the next three to five years. This includes five petroleum products, electricity, real estate and alcohol in that sequence. Among the petroleum products, the two items which can easily be brought into GST are natural gas and aviation turbine fuel (ATF). Exclusion of certain items from GST creates distortions such as cascading of tax and reversal of input tax credit. Since tax on diesel and petrol gives substantial revenue to states and

Centre, it is obvious that bringing them into the GST net will be a difficult decision. But this is doable with proper tax structuring of petroleum products, divided between GST and cess.

The items of electricity duty and potable alcohol, on which at present only states have the power to impose levies, can also be brought into the GST net by imposing only state GST on them. But inclusion of these items will help in removing input tax credit blockages; it will be both more efficient for industry and more affordable for consumers. By bringing petrol, diesel and potable alcohol into GST, the rate at which these items are sold to consumers will be common across states.

Third, we must try to rationalise the rate structure as and when the scope for revenue sacrifice increases with rising revenues. Initially, we can move from a four slab structure to a three slab structure, and gradually to a two slab structure. Multiplicity of slabs creates classification disputes and duty inversions, necessitating blockage of funds and refunds. Also, modest rates result in better compliance.

If we have to move to a three slab structure, no new item should now move from 18% to 12%, or 12% to 5%, or 5% to zero in the interest of revenue neutrality. If we deviate too much from the mean or median rate slab, it will be difficult to then increase GST on these items when the country aspires to have a single slab GST. We can easily set the goal of having a two slab structure by the end of fifth year from now.

Fourth, in the present GST system there are certain items where input tax credit is not allowed which breaks the chain. Some of these sectors are restaurants (GST rate on restaurants is 5% but without input tax credit), transport vehicles, oil or gas pipelines, telecom tower. Exclusion of items from availing input tax credit results in accumulated credit and has a cascading effect. The attempt here is to suggest a road map. The pace of actual implementation can be based on revenue growth and practical considerations of consumer interest.

---

*Date: 09-12-18*

## **To double farm exports, govt needs to halve Hindutva**

**SA Aiyar, (Swaminathan S Anklesaria Aiyar is consulting editor of The Economic Times. He has frequently been a consultant to the World Bank and Asian Development Bank)**

The government has finalised a policy to double agricultural exports by 2022, supposedly in line with its broader policy of doubling farm incomes. However, doubling farm exports cannot be a policy. It can only be an outcome of good policies. That is difficult, given lags in outcomes and volatile global conditions. To double farm exports, the government must give them top priority. In practice, all other aims get higher priority, so exports are merely a residual. No wonder they have stagnated since 2014, and agricultural exports have lost their sheen.

Many farm exports are banned the moment local prices rise. They suffer from a lack of cold chains, grading, quality control and infrastructure. These old ills need rectification. So do some new ills. A serious export thrust must focus relentlessly on cutting costs and prices to beat others in international markets. However, the aim right now is the very opposite, to raise crop prices as high as possible for political ends,



with no focus on cost control. Farmers are being treated not as world-class producers capable of conquering global markets, but as beggars requiring charitable handouts.

Modi's new formula for Minimum Support Prices (MSPs) aims to ensure farmers a return of 50% for a wide range of crops on all purchased inputs plus the imputed value of family labour. Implementation has proved impossible for several crops this season. The greater problem is that this policy pays no regard to India's comparative advantage or international prices. It encourages uncompetitive crops that are too costly to export. India is imitating the stupidities of the EEC, whose high farm support prices in the 1980s created surplus mountains of butter and meat and lakes of wine. Ultimately, these were dumped at a huge loss on the Soviet Union.

Farm distress in the past was caused by drought and poor harvests, But today's problem is one of surpluses, causing prices to crash below MSP. Even so many crops are too high-priced to export. The answer cannot be to raise prices even higher, inducing even greater unexportable surpluses. The US and Europe, that once subsidised crops, have shifted to cash transfers to farmers. This protects farm incomes without encouraging surplus production. Telengana is doing this, providing farmers a flat Rs 4,000 per acre per cropping season. Switching from high MSPs to cash transfers can mitigate farm distress while keeping prices competitive. That will help agricultural exports far better than high MSPs followed by subsidies (which may fall foul of WTO rules).

World agricultural prices shot up in 2008 and stayed high for several years. So farm production and exports boomed globally, and India too benefited. That global cycle is now reversing, and global surpluses are piling up. In this milieu, India must focus on efficiency, and on items in which it has the greatest comparative advantage. Animal husbandry has been booming. India has a major comparative advantage here. It is one of the biggest exporters of buffalo meat, and a significant exporter of sheep and goats. But export economics have been being disrupted by Hindutva. For decades, surplus bulls and oxen were sold for slaughter, along with aged cows that no longer gave milk. This ensured the farmers some thousands of rupees per surplus animal. The Hindutva drive against cow slaughter, including mob lynchings, has eroded or ended sales, impoverishing farmers. Farmers often turn such animals loose, leaving them to eat the crops of neighbours, or crowd out productive goats and sheep from shrinking pastures.

Worse, the distinction between bulls and buffaloes is getting erased. The cow may be sacred but the buffalo is not. Yet in BJP-ruled states, thugs now extort, on threat of lynching, money from buffalo transporters, shrinking supplies to slaughterhouses. Many states have closed down dozens of slaughterhouses saying these are illegal. But the deeper problem is that municipalities are not implementing their legal obligation to licence enough slaughterhouses, and the resulting scarcity induces illegal slaughter. Exporters have slaughterhouses of proven top quality to cater to global markets. So exporters should be harnessed in a crash programme to build slaughterhouses in every municipality. This will also increase the supply of hides to leather exporters. Alas, this does not figure in the new export policy.

Foot-and-mouth disease affects India's cattle, shutting it out of many markets. An aggressive health policy could eradicate this disease in five years. That will spur exports more than endless subsidies. Animal activists have managed to impose a ban on the export of sheep and goats to Gulf countries, citing cruel transport conditions. The ban should be replaced by regulated hygienic transport. By encouraging stall feeding, India can become a major exporter.

---

*Date: 09-12-18*

## The farmer's biggest enemy? The Indian state

**Amit Varma**

The late farmer leader Sharad Joshi used to recite a poem that described the Indian farmer's plight perfectly. It addresses the non-farmer from the farmer's point of view, and it goes: "Marte hum bhi hain, marte tum bhi ho./ Marte hum bhi hain, marte tum bhi ho./ Hum sasta bech ke marte hain,/Tum mahanga khareedke marte ho." I would translate it thus: "I die, my friend, and so do you./ I die, my friend, and so do you./ I sell my produce cheap, and die./ You pay so much that you die too." his beautiful shair expresses an old truth that many journalists wrote about anew this week, as protesting farmers congregated on Delhi: the gap between what farmers get for their produce, and what the consumer pays.

One report revealed that a farmer sold tomatoes at Rs 2 per kg, and consumers bought them for Rs 20. Too little; and too much. Both the farmers and consumers were getting killed by this, just like in the poem. Joshi's insight in the late 1970s was that this was caused not by the greed of middlemen, but the interference of the Indian state. The state had set forth rules that the farmer could not sell his produce in an open market, responding to supply and demand, but only to a government-appointed body called the Agricultural Produce Market Committee (APMC). Because the farmers are not allowed to sell to anyone else, they are forced to take the price offered to them. And because all produce comes through the APMC, buyers also have no bargaining power.

Now imagine what would happen if the free market was allowed to operate. Middlemen would compete to buy goods from farmers, and that competition would ensure that farmers would get a better price. They would also compete for customers, thus ensuring that customers would pay less. Instead of farmers selling for Rs 2 and the consumer buying for Rs 20, you could have the farmer selling for Rs 10 and the consumer buying for Rs 12. Both farmer and consumer would benefit by Rs 8 per kg. But the government does not allow this, and both farmers and consumers get hurt. Joshi referred to this notional cost paid by the farmer as a 'negative subsidy'. He viewed it, correctly, as theft.

The state, he asserted, is responsible for the poverty of the farmer. And this is not the only way in which the government is crippling our farmers. The state doesn't allow free markets in inputs, because of which many of the inputs, from seeds to fertilisers to energy to even credit, are either hard to come by or of a low quality. And when farmers do manage to produce crops, they are not allowed to get the best price for it, as an open market would enable. By denying them freedom, the state effectively imprisons our farmers in what a friend of mine calls PPP: Perpetually Planned Poverty.

This extends not just to produce, but to their property. Farmers are not allowed to sell their land for non-agricultural purposes. This restricts their market to other farmers, and ensures that the price is so low that it becomes pointless to sell. It has been estimated that some farmland would be forty times as valuable if this law did not exist. Indeed, a common scam is for a crony of the state to acquire land from farmers, through the state, at low prices, and then get the land-use certificate changed so that they can sell at many multiples of that price. All perfectly legal — and deeply unethical. This is how Robert Vadra was alleged to have made his money, in fact. Every political party in our history has let our farmers down, but there is a reason things are coming to a head now.

India is already facing a jobs crisis, made worse by the deepening of the agricultural crisis. With every generation, land holdings get smaller — one farmer's land is split among multiple children — and more and more unsustainable. It is no coincidence that many recent popular uprisings have been around demand for jobs from land-owning castes like Jats, Patidars and Marathas. Indian agriculture has been in crisis for decades. More than 50% of our country is in the agricultural sector, producing 14% of our GDP. In developing countries, less than 10% of the population works in agriculture. Here, we have trapped our farmers in poverty, and also not allowed the industrial revolution that would have provided a service to farmers, but instead of making the necessary structural reforms, we give handouts like farm loan waivers that provide only temporary relief. It is like handing aspirin to a burning man "Here," we say, "take this for the pain." And everybody claps.



**Date: 09-12-18**

## जकड़न के जिम्मेदार ये जाति और वर्ण

### डॉ सिद्धार्थ

ब्राह्मणवादी पितृसत्ता पदबंध दो शब्दों से मिलकर बना है। पहला ब्राह्मणवाद और दूसरा पितृसत्ता। दोनों कोई नए शब्द नहीं हैं। न अलग-अलग इनका इस्तेमाल नया है। हां एक साथ इनका इस्तेमाल कुछ लोगों को नया लग सकता है। ब्राह्मणवाद शब्द का इस्तेमाल दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत दलित-बहुजन आंदोलन द्वारा व्यापक पैमाने पर होता रहा है। ब्राह्मणवाद के पर्याय के रूप में मनुवाद का भी इस्तेमाल किया जाता है। ब्राह्मणवाद का अर्थ है वर्ण-जाति आधारित वह व्यवस्था जिसमें वर्ण-जाति के आधार पर ऊंच-नीच का एक पूरा पिरामिड है, जिसके शीर्ष पर ब्राह्मण हैं और नीचे अतिशूद्र या "अछूत" हैं, जिन्हें आज दलित कहते हैं। चूंकि इस व्यवस्था की रचना में ब्राह्मणों की केंद्रीय भूमिका थी और उनके द्वारा रचे गए ग्रंथों ने इस मुकम्मिल शक्ल और मान्यता प्रदान किया था, जिसके चलते इसे ब्राह्मणवाद कहा जाता है।

चूंकि मनुस्मृति में वर्ण-जाति व्यवस्था के नियमों और विभिन्न वर्णों के अधिकारों एवं कर्तव्यों को सबसे व्यापक, व्यवस्थित और आक्रामक तरीके से प्रस्तुत किया गया है, जिसके चलते इस मनुवादी व्यवस्था भी कहा जाता है। यहां एक बात बहुत ही स्पष्ट तरीके से समझ लेनी चाहिए कि ब्राह्मणवादी-मनुवादी व्यवस्था पदबंध के सबसे बड़े सिद्धांतकार डॉ. आंबेडकर साफ शब्दों में कहते हैं कि ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन के निशाने पर कोई जाति विशेष या व्यक्ति विशेष नहीं है, बल्कि पूरी ब्राह्मणवादी व्यवस्था है, जिसके जहर का शिकार पूरा भारतीय समाज है और इसने हिंदुओं को विशेष तौर पर मानसिक रूप में बीमार बना दिया है। अब पितृसत्ता शब्द को लेते हैं। यह एक विश्वव्यापी स्वीकृत अवधारणा है। पितृसत्ता की केंद्रीय विचारधारा यह है कि पुरुष स्त्रियों से अधिक श्रेष्ठ है, तथा महिलाओं पर पुरुषों का नियंत्रण होना चाहिए।

इसमें सारतः महिलाओं को पुरुषों की सम्पत्ति के रूप में देखा जाता है। पितृसत्ता में स्त्रियों के जीवन के जिन पहलुओं पर पुरुषों का नियंत्रण रहता है, उसमें सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसके प्रजनन क्षमता पर नियंत्रण। इसके लिए उसकी यौनिकता पर नियंत्रण जरूरी है। स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण के अलावा उसकी उत्पादकता और श्रम शक्ति पर भी नियंत्रण पुरुष का हो जाता है। एंगेल्स ने इस पूरी प्रक्रिया के संदर्भ में कहा, “यह स्त्री की विश्व स्तर की ऐतिहासिक हार थी। पुरुष घर का स्वामी बन गया, स्त्री महज पुरुष की इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम भर रह गई।” भारत की पितृसत्ता विश्वव्यापी पितृसत्ता के सामान्य लक्षणों को अपने में समेटे हुए भी खास तरह की पितृसत्ता है, जिसका वर्ण-जाति व्यवस्था से अटूट संबंध है यानी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्ण-जाति व्यवस्था और पितृसत्ता को अलग ही नहीं किया जा सकता है, दोनों एक दूसरे पर टिके हुए हैं। इसका केंद्र सजातीय विवाह है। जाति को तभी बनाए रखा जा सकता है और उसकी शुद्धता की गारंटी दी जा सकती थी, जब विभिन्न जातियों की स्त्रियों का विवाह उन्हीं जातियों के भीतर हो। अर्थात् स्त्री यौनिकता और प्रजनन पर न केवल पति, बल्कि पूरी जाति का पूर्ण नियंत्रण कायम रखा जाए। इसके लिए यह जरूरी था कि हिंदू अपनी-अपनी जाति की स्त्रियों के जीवन पर पूर्ण नियंत्रणकायम करें और इस नियंत्रण को पवित्र कर्तव्य माना जाए।

---